Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 26-05-2022, Accepted: 11-06-2022, Published: 30-06-2022
Volume 3, Issue 2, 2022, Page No. 20-22

दिनकर के काव्य में शिल्प–विधान

डॉ. कोंडा चन्द्रा
सहायक आचार्य, एस. टी. एस. एन सरकारी स्नातक कॉलेज, कदिरी, श्री सत्य साई जिला, आंध्र प्रदेश, भारत

सारांश
यह एक बहुदा उद्धृत उक्ति ही कही जाएगी कि कथ्य अपना शिल्प स्वयं ही निर्धारित करता है। दिनकर का कथ्य उनका जीवन था। प्रत्येक रचनाकार के लिए यही सच है। उनका जीवन तात्पर्य उनका व्यक्तिगत जीवन कभी नहीं होता। दिनकर के लिए कविता हमेशा अपने को प्रभावशाली रूप में पहचानने का साधन रही है। दिनकर का साहित्य दर्शन एक स्तर पर तो उनके व्यक्तित्व का प्रकटन रहा है।

मूल शब्दः आमंत्रण, रूपांतरित, वैयक्तिक, पारदर्शी, सिद्धांत

प्रस्तावना
दिनकर मात्र कवि ही नहीं, विचारक और अध्येता भी रहे हैं। बाहर स्थित साहित्य का विशाल भंडार उन्हें सदा ही आमंत्रण देता रहा है कि वे उसे आंतरिकीकृत करें। दिनकर आंतरिकीकृत करते रहे हैं। अभिव्यंजनीय साहित्य–साहित्यवस्तु की उदभावना इसी संदर्भ में उनके साहित्य के विषय में की जा सकती है। इसके दो पक्ष हैं एक तो उन्होंने साहित्य, उसके रूप, क्थ्य की समस्याएं और उसके सामाजिक– सांस्कृतिक पक्षों पर गद्य में लिखा है और दूसरा,वे अपनी रचनाओं में से कुछ को काव्य–वस्तु भी बनाते रहे हैं।
दिनकर के लिए कविता हमेशा अपने को प्रभावशाली रूप मे पहचानने का साधन रही है। ऐसे में साहित्य भी वस्तु रूप में ढलकर प्रभावशाली होने के उद्देश्य से ही रचनाबंध का अंश बना है। दिनकर को अपने विचारों से बड़ा मोह था। जब साहित्य–दर्शन काव्य–वस्तु के पद पर आसीन होता है तो रचनाकार की बेचैनी में रूपांतरित होकर ही कई बार उस बेचैनी का समाधान मिल पाता है और कई बार नहीं। 'रेणुका' की पहली कविता 'मंगल आहवान' के विश्लेषण से यह बात उजागर होती है। प्रारंभ के कुछ अंशों को देखें तो अपने भावावेगों को एक स्वतंत्र अस्तित्व देकर कवि कह रहा है –––

भावों के आवेग प्रबल
मचा रहे उर में हलचल।
कहते, उर के बांध तोड़
स्वर स्त्रोतों में बह–बह अनजान,
तृण, तरु लता, अनिल जल–थल को
छा लेंगे हम बह कर गाना।
पर हूं विवश, गान से कैसे
जग को हाय! जगाऊं मैं,
इस तमिस्त्र युग–बीच ज्योति की
कौन रागिनी गाऊ मै?
बाट जोहता हूं लाचार
आओ, स्वर–सम्राट! उदार।

इस अंश में कवि की मंशा और उसके भावावेशों में द्वित्व है अथवा वे स्पष्टतः अलग–अलग हैं। भावावेगों की मंशा समस्त चराचर जगत को छा लेने की है, किंतु, कवि जगत को जगाना चाहता है,अंधेरे में ज्योति की रागिनी गाना चाहती है। कौन कह सकता है कि यह द्विधा वही नहीं है, जहां से दर्शन आरंभ होता है। जो भी है, 'उर में हलचल बांध तोड़कर छा लेने की कामना' और जो चाहिए अर्थात युग को जगाना तथा अंधेरे में ज्योति की रागिनी गाने में सक्षम है। कवि को उत्तरदायी होने के लिए कहा जा रहा है और कहने का स्वर कुछ ऐसा है कि जैसे प्रेरणा दी जा रही है।इतना तो अवश्य है कि दिनकर रचनाकर को विशिष्ट कोटि का जीव मानते है और उसके काम भी विशिष्ट ही मानते हैं। संभवतः दिनकर, था जानते थे कि उनके लिए कविता कोई शोक या मात्र रुचि की वस्तु नहीं थी। यदि शैशव का ध्यान करें तो महत्वबोध और पहचान का संकट और ये दो स्थितियां साथ–साथ थी। बाद मे जब कविता आरंभ करने का समय आया तो समग्र वातावरण अथवा परिदृश्य बड़ा उत्तेजक था। "बिहार के विद्रोही राष्ट्रीय चेतना के अग्रिमय वातावरण में उनके कवि रूप का विमान हुआ। माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी और मैथलीशरण गुप्त की रचनाओं द्वारा उन्हें राष्ट्रीय कविता के संस्कार प्राप्त हुए। छायावाद के युवक कवियों की रेशमी झिलमिलाहट्ट से भी उनका कल्पनाशील युवा व्यकित्व प्रभावित हुआ या हुए बिना नहीं रह सका। "दिनकर्के साहित्य दर्शन का आधार ये दोनों आधारभूत स्थितियां थीं –– वैयक्तिक और युगीन। सुकुमार कल्पना और राष्ट्रीयता में इसलिए विरोध नहीं देखा जा सकता ।उनके काव्य में आवेगात्मकता और बौद्धिकता का इतना कुछ वर्चस्व रहा है कि वे स्थायी महत्व की हो पाएंगी, इसमें कई अध्येताओं को संदेह है, किंतु उनकी आलोचना (साहित्य दर्शन) को स्थायी माना गया।

दिनकर कविता के क्षेत्र में तो अपने को लोकप्रिय और प्रभावशाली बनाने में सफल हो गए थे,किंतु साहित्य में आलोचक की अपनी विशिष्ट प्रतिष्ठा होती है। अपने महत्व की स्थापना और प्रभावित करने की इच्छा ने उन्हें आलोचना में भी सक्रिय किया। उनकी मानसिक ग्रंथि सदैव उन्हें सामयिक साहित्यकारों से विलग करने की चेष्टा में लिप्त रहती। इस चेष्टा के बावजूद दिनकर साहित्य दर्शन में श्रालाघनीय बातें कही गई हैं ।सर्वप्रथम वे किसी साहित्यिक युग का आधार उसका सामाजिक युग ही मानते थे। अपने ही युग के बारे में लिखते हुए उन्होंने कहा ––" भारतवर्ष के इतिहास में यह वह समय आया हुआ था, जब कुछ दिनों के लिए, वैयक्तिक अनुभूतियां सिमट कर ए एक कोने में चली जाती हैं और सबके स्थान पर सामूहिक कर्तव्य 'और' सामूहिक अनुभूतियों' की ओर नितांत वैयक्तिक महत्वाकांक्षा के दबाव से भी जाना जा सकता है। उनकी महत्वकांक्षाएं उन्हें समयानुकूल राष्ट्रीयता की ओर खींच ले गई।" जब साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने प्रवेश किया, तब उन्हे साहित्यिक एवं शास्त्रीय सिद्धांतों का ज्ञान नहीं था –– "सच तो ये है की जब मैंने कविता लिखना आरंभ किया,उस समय काव्य संबंधी सिद्धांतों का मुझे कुछ भी ज्ञान न था, न मैं यही जानता था कि कविता क्यों लिखी जानी चाहिए... और तो और मुझे हिंदी व्याकरण का भी शुद्ध ज्ञान नहीं था। "बाद में उन्होंने चुन–चुन कर उन विषयों पर निबंध लिखे, जो अपने स्वभाव से ही शास्त्रीय थे। सामाजिक युग को साहित्यिक–युग का आधार मानते हुए वे कवि वे व्यक्तित्व को सर्वत्र स्वतंत्र मानते हैं ––"साहित्य को हम जीवन की व्याख्या मानते आए हैं,किंतु ,जीवन और उसकी इस व्याख्या के बीच एक माध्यम है जो व्याख्याता,कवि वे कलाकार का निजी व्यक्तित्व है। प्रकृति के अंग–अंग में हमारे लिए जो एक अर्थपूर्ण संदेश निहित है,उसे स्वयं हम ग्रहण नहीं कर सकते। हमारे लिए उसे कवि ही ग्रहण करता है और जब इन संदेशों का रागोत्तेजक चित्र हमारे सामने रखता है, तब उसके चारों ओर,उसके निजी व्यक्तित्व का पारदर्शी शीशे जैसा आवरण लगा रहता है।"

पूर्व विवेचन के प्रारंभिक अंश का पुनः स्मरण करें तो यही थी 'एजरा पाउंड 'ने' कलाकार को जाति का एंटीना' कहकर प्रस्तुत किया था। यों भारत में शुरू से ही कवि की प्रतिभा से युक्त मानकर देवी सरस्वती का पुत्र,प्रजा प्रजापति,क्रांतद्रष्टा आदि कहा गया है। दिनकर की यह मान्यता इसी परंपरा में आती है। उपयोगिता के घेरे में आब्द्व मनुष्य व्यक्तित्व विहीन हो जाता है। अधिक सही होगा यदि हम कहें कि व्यक्तित्व की मानवीयता का आधार उपयोगिताओं के घेरे से निकलकर ही हो पाता है। रविंद्रनाथ को अपने पक्ष में उद्धृत करते हुए दिनकर ने इसी तथ्य को इन शब्दों में लिखा है––" रविंद्रनाथ ने लिखा है कि कला,व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को कहते हैं। किंतु, मनुष्य जब तक उपयोगिता के घेरे में है, तब ता उसमें व्यक्तित्व नहीं है। व्यक्तित्व हमारा तब प्रारंभ होता है, जब हम उपयोगिता के घेरों को लांगने लगते है, जब हम ऐसे कार्य करने लगते हैं, जिनका हमारी जैविक आवश्यकताओं से कोई संबंध नहीं ...सिपाही का उपयोग युद्धभूमि में जाकर मारने और मरने से है। किंतु, यह उसका व्यक्तित्व नहीं है। व्यक्तित्व उसका तब उभरता है जब वह वर्दी पहनकर बाजों की ताल पर कवायद की चाल में चलता है । "दिनकर के साहित्य दर्शन में ' सत्यम–शिवम–सुंदरम' के प्रति पक्षीय बात झलकती है। एक अन्य संदर्भ में सन 1933 में लिखित –– 'कलातीर्थ की चर्चा की गई थी । यहां भी उस कविता में निहित दर्शन की प्रासंगिकता होगी ––

"प्रेम सत्य की प्रथम प्रभा है, जिधर अमर छवि लहराती है उधर सत्य की
प्रभा प्रेम बन बेसुध सी दौड़ी जाती है।"
प्रेमाकुल जब हृदय स्वयं मिट हो जाता सुंदरता में लय ––
दर्शन देता स्वयं उसे तब सुंदर बनकर सत्य निरामय,
देखा, कवि का स्वप्र मधुर था, उमड़ी अमिय धार जीवन में,
पूर्ण चंद्र बन चमक रहे थे 'शिव–सुंदर' आनंद–गगन में।"

कभी चयन का प्रश्न आ जाय तो दिनकर के साहित्य–दर्शन में किसे महत्व दिया जाएगा ? 'सत्य' को या 'सौंदर्य' या फिर 'शिव' को ?... 'साहित्य का दुर्भाग्य यह है कि यद्यपि प्रत्येक छात्र यही समझता है कि 'सत्य', शिवम और सुंदरम' का समन्वय साहित्य है…" दिनकर ने अपने जीवन में कई उतार–चढ़ाव देखे थे, उनके अनुभवों के अनुसार सत्य,शिव,सौंदर्य से पूर्ण नहीं हो सकता, शिव में सत्य नही चलता और सौंदर्य, सत्य, और शिव का प्रभुत्व नहीं स्वीकारता।" 'दिनकर' को चुनने की घड़ी आ ही जाए तो सुंदर के चुनने के पक्षपाती थे।" जो सुंदर नहीं है, वह सत्य हो या शिव, हम उसे कला की कृति नहीं कह सकते, चाहे वह धर्म का आख्यान ही क्यों न हो।" अतः स्पष्ट ही वे दिनकर के साहित्य दर्शन में निहित अहम को कई अध्येताओं ने देखा है । रामारानी सिंह ने लिखा ––" यह दिनकर का अहम ही है, जो उन्हें अन्य कविताओं में भी विशिष्टता बनाए रखने को प्रेरित करता है।" अपने को समूह से अलग करने और विशिष्टता धारण करने के पीछे कहीं वह हीन भावना रहती है जो अपने प्रति क्रियात्मक रूप में उच्चता अथवा श्रेष्ठता की भावना को व्यक्त होती है।" दिनकर के मन की अनन्यता के प्रति चाह ही उनकी कुंठा, उनकी ग्रंथि की निदर्शना करती है। यह अनन्यता उनके मन की कुंठाओं का ही प्रतिफलन है।" सन 1944 में दिनकर बिहार प्रांतीय प्रगतिशील लेखक संघ के एक भाषण में कह रहे थे ––" साहित्यकार की दिलचस्पी आज जीवन के एक अंग से नहीं बल्कि पूरी सामाजिक वास्तविकता से होगी। उसे आज संसार को केवल कवि ही नहीं राजनीतिक, वैज्ञानिक और दर्शनवेत्ता की दृष्टि से भी देखना पड़ेगा।... आज साहित्य को वैयक्तिक अनुभूतियों की अपेक्षा स्वभावतः ही, उन सार्वजनीन अनुभूतियों को अधिक महत्व देना है जिनके कारण पृथ्वी अशांत एवम मनुष्य लहू से लाल है तथा पहाड़ उखड़का समुद्र में डूब जाना चाहते हैं।... अब साहित्य सोच ले कि उसे क्या करना है। क्या वह मानव मन के अग्रमुख स्तरों पर अनुसंधान करने में अपनी शक्तियों का अपव्यय करेगा, क्लासिक और एकेडमिक होकर रह जाएगा या उन लोगों के साथ चलेगा जो भविष्यत के" कोट पर कब्जा करना चाहते हैं।" वर्षों बाद वे 'उर्वशी' की भूमिका में लिखे थे ––"श्रेष्ठ कविता, बराबर, भौतिक से परे भोतिकोत्तर सौंदर्य का संकेत देती है, फिजिकल को लांघ कर' मेय फिजिकल हो जाती है। "दिनकर का साहित्य दर्शन इस प्रकार एक स्तर पर तो उनके व्यक्तित्व का प्रकटन रहा। समय – समय पर आने वाले सिद्धांत कुल मिलाकर उसी अर्थ में दिनकर के 'अहम' की स्थिति की ओर संकेत करते रहे, जिस अर्थ में काव्य करता रहा था। सामाजिकता, राष्ट्रीयता, भावनाओं की सुकुमारता, कवि

व्यक्तित्व की अनन्यता आदि सिद्धांतों के मूल में हमें ग्रहणशील अभिमुखता प्रधान चरित्र की वे विशेषताएं देखने को मिलती हैं जिनके अन्तर्गत 'बाहर' ही 'भीतर' को निर्धारित करता है। द्वंद्व और भावना, मस्तिष्क और हृदय आदि द्वंद्व मूलतः छद्म द्वंद्व हैं क्योंकि एक व्यक्तित्व को ही वे दोनो प्रकट करते हैं। यथा–––

"हेर थका तू भेद, गगन पर क्यों उड़–राशि चमकती है
देख रहा मै खड़ा मगर, आखों की तृषा न छकती है।
मैं प्रेमी, तू ज्ञान–विषारद, मुझमें तुझमें भेद यही,
हृदय देखता उसे तर्क से बुद्धि न जिसे समझती है।"

अतः दिनकर जी सम्पूर्ण काव्य शिल्पगत दृष्टि से स्पष्ट और पूर्णता को प्राप्त सफलता का प्रतीक है।

संदर्भ सूची

1. दिनकर – रेणुका, पृ. 5
2. सावित्री सिन्हा दृ युगचारण दिनकर, पृ. 68
3. दिनकर दृ चक्रवाल, पृ. 33
4. रमारानी सिंह दृ दिनकर साहित्य में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति, पृ. 202
5. दिनकर दृ काव्य की भूमिका, पृ। 138